महत्तम समापवर्त्य

ओमा शर्मा

महत्तम समापवर्त्य

उनकी हर चीज में नफासत थी।

बोल-चाल में संयत ठहराव। पहनावे में जहीनी चटख और हावभाव में गरिमापूर्ण सादगी। घर की इमारत किसी कलात्मक वास्तुशिल्पी ने बनाई थी। घुमावदार सीढ़ियाँ, पर्याप्त रोशनी, लुभावना रंग-रोगन, जगह की व्यवस्था में आमंत्रित-सा

करता खुलापन। मुझे तो पुरोहित साहब, यानी मेरे बॉस ने पहले ही बता दिया था कि मिसेज चाँद ने इंटीरियर डेकोरेशन का कोर्स किया हुआ है। आना पहले उन्हीं को था मगर आखिर वक्त में उन्हें किसी जरूरी काम से जाना पड़ा तो उन्होंने मुझे ठेल दिया... कि जाओ और फलाँ बँगले के इंटीरियर में और क्या किया जा सकता है, इसका मुआयना कर आओ। चटख मोटे परदे, विशिष्ट किस्म की मेज-कुर्सियाँ, मेज पर रखे हुए कुछ स्टैच्यूज... हर कमरे की एक अलग ही सज्जा। घर में घुसने के बाद थोड़ी देर बैठने का मन करे। चीजों को निहारने का मन करे। रही-सही कसर पूरी कर दी साज-सज्जा के अनुरूप रखी दो-तीन पेंटिंग्स ने जो पूरे मकान के सौंदर्य पर चार-चाँद लगा रही थीं।

मुझे सुकून मिल रहा था... आज के दौर में कोई घर के अंदर चीजों को इतनी तहजीब, चयन और सुविधा से कहाँ रख पाता है।

उन्होंने माना भी कि घर की सारी बुनावट में केवल उन्हीं का योगदान है। पति का व्यवसाय है, अतः फुर्सत नहीं है। घर के बनाने में मिट्टी गारे से लेकर आर्कीटैक्ट मुकर्रर किए जाने या पेंटिंग्स के चयन में, सारा कुछ उन्हीं का है। पवन, यानी उनके पति का सहयोग है तो बस इतना ही कि पैसे को लेकर उन्होंने कभी उनका हाथ नहीं खींचा। जितना उन्होंने माँगा, दिया। कोई सवाल भी नहीं किया कि... इतना महँगा क्यों खरीद रही हो, थोड़े दिन बाद कर लेना... भाई साहब तो यह नहीं करा रहे हैं।

भाई साहब वाली बात अपनी जगह अहम थी। दोनों बँगले के ईंट-दर-ईंट एक ही शिल्पी ने गढ़े थे मगर अंदरूनी साज-सज्जा ने दोनों के बीच ऐसा कायाकल्प मचा रखा था कि उनका घर थोड़े सुकून से बैठने का निमंत्रण देता जाता था तो भाई साहब वाला अपने मामूलीपन से ओछा लग रहा था।

'आपने अपना गार्डन अच्छा मैंटेन कर रखा है।' यह सच भी था।

एक साथ कटी ताजा हरी घास, व्यवस्थित कटे-छँटे फूल-पौधे। मेरी याददाश्त अच्छी होती तो आपको बता सकता था कि बैंगनी रंग के फूलों से लदी उस घास का क्या नाम था जिसने एक पेड़ की शक्ल अख्तियार कर रखी थी।

'इनके दफ्तर जाने के बाद कोई दो घंटे रोज मैं इनकी देखरेख में लगाती हूँ। कभी माली के सहारे नहीं छोड़ा, हालाँकि आता वो रोज है' वे जैसे तत्पर थीं।

'ये मर्लिन मुनरो है ना?' उस एकांत में यह प्रश्न अश्लील था मगर मैं रोक नहीं पाया।

ड्राइंग-रूम के कोने की गोल मेज पर तीन फिटी आकृति को देख मैंने पूछा। कटे अलमस्त बाल, मुस्कराहट में धीमे-से खुला चेहरा, किसी उन्माद के आगोश में सनी आँखें, टेढ़े तने जिस्म के विरुद्ध बगावत करती स्कर्ट के ऊपर आधे उघड़े वक्षों के आनुपातिक तनाव को अनदेखा करना हर्गिज नामुमकिन था। पतली लंबी और कमान-सी खिंची टाँगें...।

'जी...' उनकी गर्दन नाम सुनने को लपलपाई।

'मर्लिन मुनरो' मेरा तीर चूँकि छूट चुका था इसलिए अब अपोलोजैटिक होने की वजह नहीं थी।

'कौन?'

मासूम चेहरे की मासूमियत बता रही थी कि उस अमरीकी करिश्मे की उन्हें दूर तक खबर नहीं थी। बात ही आई-गई करनी पड़ी। झक्क काले रंग में मैटल की प्रतिमा थी। पाँच-सात हजार से कम की क्या होगी।

'आपका सौंदर्यबोध लाजवाब है।' मैं चापलूसी नहीं सिर्फ सच बयानी कर रहा था। चीजें इस कदर खूबसूरत और इफरात में थीं कि मुझे इसी शगूफे से रिक्तिपूर्ति करनी पड़ी।

'धन्यवाद' बिलाहिचक स्वीकारते हुए वे मुस्कराईं। मानो, यह सुनने की कब से अभ्यस्त हों।

'ये सूजा की पेंटिंग आपने कहाँ से ली?'

'यहीं पर एक एग्जीबीशन लगी थी। मेरी सहेली के यहाँ भी है। उसके यहाँ देखकर मैंने पसंद की थी।'

'आप जानती हैं ये किसकी है?'

'नहीं।'

'आप सूजा को जानती हैं?'

'ये कौन है?'

अब तक तय हो गया था कि न तो उन्हें कला के बारे में जानकारी है और न कलाकारों के बारे में। उन्हें जो अच्छा लगता है, करती हैं। पति का सहयोग अलबत्ता उन्हें रहता ही है।

यह बात भी सोलह आने सच थी कि उनके घर में पसरे सौंदर्य के बावजूद पतिदेव की अभिरुचियों पर उसका कोई असर नहीं था। उसके बाल अजब तरह से बढ़े थे। बातचीत में एकदम किसी दूसरे कारोबारी की तरह दब्बू। घर की हर चीज से निरपेक्ष। टहोके उठाने के लिए एक नौकर था जिसे वह बात बेबात इस्तेमाल करता। पीने के लिए पानी माँगता मगर दो घूँट पीकर वापस कर देता। थोड़ी देर में फिर मँगाता।

अच्छा हुआ, जल्द ही, वह टहलुए को लेकर धंधे पर चला गया।

उन्होंने ही बताया कि घर की चीजों में बच्चों की भी रुचि नहीं है जो चीज अच्छी-बुरी, वे ले आती हैं, ना-नुकर के बिना काम आती है।

'कोई भी कला या सौंदर्यबोध का हमारे जीवन में क्या रोल होता है?'

यह सवाल किसी प्रहार की तरह उन पर गिरा।

वे बैठी थीं। आराम से। सुनकर सचेत हो गईं।

'मैं समझी नहीं?'

'जैसे कोई कला यदि हमारे अंदर है या किसी कलात्मक चीज के प्रति हम आकर्षित होते हैं, तो इसके क्या मायने होते हैं?'

अब भी ढाक के वही तीन पात थे। मगर उन्हें लगा, यहाँ कुछ उत्तर दिया जाना चाहिए। वरना तो उन्हें बेपढ़ा माना जा सकता था।

'सौंदर्य तो देखने-परखने की चीज होती है... फिर भी पता नहीं आप इससे क्या मतलब निकाल रहे हैं।' उन्होंने सकुचाते हुए कहा।

'वैसे तो हर व्यक्ति का अपना ही सौंदर्यबोध होता है... किसी को लाल रंग पसंद है किसी को नीला या हरा, लेकिन जैसे यह वाला जो तकिए का कवर है और इस हल्के बैंगनी रंग में, सभी को लुभाएगा... सभी इसे न खरीदें... इसके पीछे दूसरे कारण हो सकते हैं... जैसे उपलब्ध न हो, थोड़ा महँगा हो या...' मैंने जितना खुलकर, बेतकल्लुफी से कह सकता था, कह डाला। उन्हें तर्क में दम नजर आया।

'तो?'

बात के विस्तार से मुझे भी लगा, बात ही गायब हो गई है।

'मतलब यही कि सौंदर्य को परखने की जो दृष्टि हमारे तईं होती है... एक ऐसी दृष्टि जो सार्वभौमिकता लिए हुए हो... उसकी क्या अहमियत है?'

'उसकी क्या अहमियत होगी? उनके सपाट चेहरे पर अज्ञान था या प्रतिप्रश्न, मैं भेद नहीं कर पा रहा था।

'मतलब यही कि क्या इसे व्यक्ति के परिष्कृत संस्कारों का ही रूपक मानें?'

'हाँ वो तो मानना चाहिए।'

पहली बार उनकी स्थिति डाँवाडोल से परे थी।

'तो हमारे व्यक्तित्व के परिमार्जन की जरूरत या अहमियत क्या होती है?'

'आप चाय पीएँगे?'

शहरी आवभगत के चोले में उन्होंने थोड़ी राहत-सी ली। मैंने 'हाँ' कह दिया। मैंने उन्हें पटरी पर लाना चाहा तो वे लगभग बौखला गईं।

'पता नहीं आप क्या कर रहे हैं...? क्या पूछ रहे हैं? सबकी अपनी-अपनी पसंद होती है। मेरी भी है। मुझे नहीं पता इसमें कोई कला है, परिमार्जन है...'

उन्होंने अपने पर चढ़ता धूल-धक्कड़ लगभग झाड़ दिया। वे अब अपने को ज्यादा महफूज-सा महसूस कर रही थीं।

'कोई कलात्मक चीज, पहली बात तो ये, इतनी अनायास भी नहीं होती... दूसरी बात ये कि एक खास तरह की, या कहें कलात्मक रूप से बेहतर, चीजों के प्रति यदि हम आकर्षित होते हैं तो, वे मनुष्य के रूप में क्या हमें बेहतर नहीं बनाती हैं? आप ये मानती हैं या नहीं?'

'इसमें बेहतरी कमतरी की बात ही नहीं है। पसंद-नापसंद में कोई चीज कम या ज्यादा कलात्मक हो सकती है, बेहतर कमतर नहीं। मुझे फलाँ डिजाइन का सोफा पसंद है, आपको किसी दूसरे का...'

लग रहा था वे अपनी फेहरिस्त गिना सकती हैं लेकिन मैंने ही काटा।

'तो फिर कला या कलात्मक सौंदर्यबोध का मतलब क्या है?'

'मुझे नहीं पता... मैंने तो ये शब्द भी आपसे सुना।' उन्होंने अपना पीछा छुड़ाने की ऐसी कोशिश की, कि मैं खुद हँस पड़ा।

'आपमें जो संस्कार या समझ है - चीजों की, उनके व्यवस्थित, सुघड़पन की, खूबसूरती की... शायद आपके बच्चों या पति में नहीं है। वो ठीक है, उनका अपना अस्तित्व है और आपका अपना। लेकिन घर में आपने जो सजावट की है... क्या आपको लगता है इससे आपके पति के अंदर, जीवन या उसके मूल्यों को लेकर जो समझ है, किसी रूप में प्रभावित होगी... मतलब, क्या सौंदर्य का सामीप्य थोड़े बहुत बदलाव या परिमार्जन का सबब हो सकता है।' मैंने बहुत सँभल-सँभलकर कहा, किसी भी कलात्मक या सौंदर्यबोधमूलक शब्द से परहेज-सा करते हुए।

'बदलाव के बारे में कैसे कहा जा सकता है... बच्चे घर से ज्यादा तो स्कूल या दोस्तों के साथ रहते हैं। हसबैंड हैं, मगर उन्हें काम-काज से ही फुर्सत नहीं... तो मुझे नहीं लगता उनमें इससे कोई बदलाव आएगा... ना मैं ऐसी उम्मीद रखती हूँ।'

मुझे लगने लगा, अब वे ज्यादा खुलकर और स्पष्ट बोल रही हैं। संशय तो उनमें अब नदारद ही था।

'लेकिन आपके बच्चे... बच्चे दिखाई नहीं दे रहे हैं?'

जिक्र छिड़ने पर ऐसा सवाल न करना अमर्यादित हो सकता था। विशेषकर उस सुनसान से माहौल में जहाँ मुझे उनकी प्राथमिकताओं के मद्देनजर अपने सुझाव देकर घर के डैकोर को अंतिम रूप देकर पाँच-दस मिनट में निकल जाना था। मगर उन्हें देखते ही मुझे क्या सूझी कि अच्छा-खासा पत्रकार बन बैठा।

'वो हॉस्टल में पढ़ते हैं। नैनीताल में। कोई 4-5 बरस हो गए। छुट्टियों में ही मिलना होता है। उनका भी अपना खर्च है। वैसे भी वे छोटे हैं, कभी आते हैं तो सब कुछ उल्टा करने में लगे रहते हैं।'

'क्या आपकी अपेक्षा रहती है कि बच्चे या पति आपकी चीजों को एप्रिशिएट करें?'

'नहीं, कतई नहीं... हरेक व्यक्ति अपनी तरह से दुनिया देखने को स्वतंत्र है... होना भी चाहिए...'

मुझे लगा बाजी उनकी तरफ झुकने लगी थी। इसीलिए मैं फिर अपने शस्त्र बटोरने लगा।

'लेकिन कला का कोई बृहत्तर उद्देश्य भी होता है या नहीं?'

'कला से आप ये मुगालता क्यों पालते हैं कि वह ऐसा करे। करे तो अच्छा है मगर यह आग्रह के तौर पर नहीं होना चाहिए... वैसे भी छोटी-छोटी अपेक्षाएँ कुछ समय बाद बड़ी होने लगती हैं और फिर वे उस कला के प्राकृतिक स्वरूप के साथ ही खिलवाड़ करती हैं।'

उनका स्वर गहराने लगा था। अब वे मुझे नहीं, सामने रखी उस अमूर्त-सी पेंटिंग (प्रिंट) जिसे वे बाजार से, बिना चित्रकार का नाम जाने खरीद लाई थीं, को संबोधित करती ज्यादा लग रही थीं। मैं कशमकश में पड़ गया कि साहिबा को मार्लिन मुनरो की दुम की खबर नहीं है और कला के उद्देश्य पर किस स्पष्टता से बयान दे रही हैं।

लेकिन उन्होंने मुझे ज्यादा मौका नहीं दिया और सवाल दाग बैठीं।

'अच्छा आप ये बताइए... कि प्रकृति में इतना कुछ है... हर तरह के जीव-जंतु-जानवर, पेड़-पौधे-फूल-पहाड़... हम लोगों के हिसाब से सब कितने सुंदर हैं... लेकिन आप तहकीकात करें तो पता लगेगा कि जैविक दुनिया में लगातार एक घिनौनी हिंसा कार्यरत है और गैर जैविक में दमघोंटू विघटन... हमारे पैमानों पर फिर भी वे सुंदरता की शर्तें पूरा करते हैं मगर यह सब एक व्याख्या लादने जैसा है। सुंदरता, खासकर जिस रूप में वह सराही जाती है, वहाँ बनी हुई नहीं है, इतिहास की तरह ढूँढ़ी गई है... कला मर्मज्ञों द्वारा...'

मुझे लगा इस औरत के अंदर अभी-अभी किसी आत्मा ने प्रवेश कर लिया है। सूजा के चित्र खरीदते वक्त इसे पता नहीं होता कि इसका चित्रकार कौन है, मार्लिन मुनरो को तो हिंदुस्तानी शहरों के गधे भी जानते हैं। लेकिन साहिबा बेखबर हैं। मगर सौंदर्य की कैसी हैरतअंगेज संकल्पनाओं को कोख में सिरजे बैठी हैं? जैविक दुनिया की घिनौनी हिंसा और गैर जैविक संसार का दमघोंटू विघटन... क्या भयंकर तर्क सम्मिश्रण है।

'अच्छा ये बताइए, आपके घर में ये पेंटिंग्स, ये गमले, ये स्टैच्यूज यानी वह सब सामान जो आपके कलात्मक रुख को अभिव्यक्त करता है, हटा लिया जाए तो आपको कैसा लगेगा... मतलब आप क्या मिस करेंगी...?'

'दूसरा ले आएँगे।' उन्होंने पूरी नादानी से कहा।

मैंने बिना आक्रमक हुए मुस्कराकर कहा, 'न होने से मेरा मतलब है... जब किसी भी तरह ये चीजें आपको मुहैया न हों?'

'मैं समझ गई।' मेरे द्वारा अपने को यूँ कमतर तौले जाने की मुद्रा का जोरदार प्रतिकार करते हुए वे बोलीं, 'दुनिया में विकल्पों की कमी है क्या... किसी भी चीज को, सौभाग्यवश, बनाने या खरीदनेवाला कोई एक तो होता नहीं है, दूसरे भी होते हैं। फिर हर चीज का बाजार है। आप यदि अफोर्ड कर सकते हैं तो जो मर्जी खरीदें...'

'तो क्या सौंदर्य के लिए पैसा जरूरी है?'

जो चीजें हमारे आस-पास बिखरी थीं, महँगी ही थीं। अतः इस सवाल ने उन्हें कुछ चेताया।

'नहीं, ऐसा तो नहीं है, ज्यादा पैसे से घटिया चीजें भी खरीदी जा सकती हैं... महँगी चीज अच्छी भी हो, यह जरूरी नहीं है।'

मुझे लगा मेरा तीर सही निशाने पर जा रहा है।

'तो इस 'अच्छेपने' की आपकी परिभाषा या मानदंड क्या है। कलात्मक या सौंदर्यबोध के संदर्भ में मैं जानना भी यही चाह रहा था...'

अपनी बात का थोड़ा-सा विस्तार उन्हें अच्छा नहीं लगा क्योंकि बात वे समझ गई थीं।

'ये बताना या समझाना तो थोड़ा मुश्किल ही है। बहुत कुछ तो यह व्यक्तिपरक ही है... जिसे जो सुंदर लगे...।'

'वही बात है कि... यानी जिसे जो सुंदर लगनेवाली बात है तो किसी कृति के सुंदर या अच्छा होने से क्या अभिप्राय है?'

बात जब इस मुकाम तक आ गई तो मुझे भी झिझकने की दरकार नहीं लगी।

'सुंदरता को समझाना मुश्किल है।' उन्होंने लगभग समर्पण करते हुए कहा।

मुझे भी किसी और व्याख्या की गुंजाइश नहीं दिखी तो फिर से वही शुरुआती तमंचा उठा लिया।

'आप अपनी पसंदीदा सुंदरता के बगैर कैसे रहेंगी?'

'सुंदरता जीने के लिए जरूरी नहीं है। इसके बगैर भी आसानी से रहा जा सकता है। यह जीवन के अमूर्त कोनों या मैनहोलों को भरने के लिए जरूरी हो सकती है... अंततः तो यह किसी गर्वमिश्रित सार्थकता बोध के अहसास की ही मरीचिका है... निरर्थक होते जा रहे जीवन में कुछ अर्थ झोंकने की निष्कलुष कोशिश... अब मुझे ही देखिए, भाई साहब की तरह पवन भी मुझे समय दे पाते या बच्चे हॉस्टल की बजाय यहीं रह रहे होते तो मुझे कहाँ जरूरत होती इस सबकी... जो चीजें आप देख रहे हैं बेशक, लंबे इंतजार के बाद, मशक्कत से, चुन-चुनकर एकत्र की गई हैं, लेकिन उनके बारे में सोच तो तभी बनी थी जब मैं खालीपन के अहसास से भरी थी... कुछ लोग अपने खालीपन को भरने के लिए कुत्ते पालते हैं, बागवानी करते हैं, कुछ कहानी-कविता लिखते हैं तो कुछ यायावरी करते हैं... मूलतः इन सबमें, उस लिहाज से कोई फर्क नहीं है...'

मैं फिर हक्का-बक्का रह गया। बातें चाहे उलझी कर रही हो, लेकिन महिला है सुलझी हुई। गड्डमड्ड पगडंडियों पर भी एक चकरोट-सा बनाते हुए... और बातें भी ऐसी कि झड्डी ली जा सके। कहाँ कहानी-लेखन और कहाँ बागवानी या कुत्ते पालना? होश में तो है या धतूरा गुटक गई है। अगर वह कोई समीक्षक वगैरा होती तो मान सकता था कि जान-बूझकर लफ्फाजी कर रही हे। लेकिन मैं जानता था कि ऊबड़-खाबड़ बातें करते वक्त भी वह अपना सच कह रही है। इतनी पढ़ी-लिखी वह नहीं थी कि झूठ को किसी अमूर्त तार्किक सच का आवरण दे सके।

'नहीं, लेकिन सवाल ये था कि, इन सबके बिना आप कैसा महसूस करेंगी' उनके बारे में बनती-बिगड़ती अपनी मुसलसल सोच को लगाम देकर मैंने कहा।

'पहली बात तो यही कि मैंने आपके सवाल का जवाब दे दिया है। दूसरे ये कि पसंदीदा चीज कोई एक नहीं होती है, एक नहीं तो दूसरी, दूसरी नहीं तो तीसरी... ऑफकोर्स, हैसियत, जानकारी और उपलब्धता हमारे विकल्पों को निर्धारित करते हैं। हाजमोला महँगी नहीं होती है, मगर किसी गरीब परिवार में उसकी एवज में कोई चूरन की पुड़िया ही दिखेगी। थोड़ी बारीकी से देखें तो यही फर्क है। चूरन वहाँ हाजमे की नहीं, स्वाद की पूर्ति करता है...'

'तो जिंदगी में स्वाद जरूरी है या हाजमा**?**'

दरअसल मेरे पास उनसे पूछने को कुछ नहीं था। उनकी कलात्मक चीजों के बजाय अब मैं उनकी समझ का कायल हुआ जा रहा था। मुझे अफसोस भी हो रहा था कि किसी व्यवसायी की पत्नी होने के दायित्व ने यकीनन किसी प्रतिभा का कैसा हस्र कर दिया है। थोड़े एक्सपोजर और अध्ययन की हवा मिली होती तो इसके कलागत

जीवाणु पूरे भड़भड़ा सकते थे। मगर किस्मत को तो मंजूर था कि सुबह-शाम के खानों के खाली दरमियाँ को वह पति के इंतजार से भरे... और अपने बचे-खुचे कलाबोध से उसकी खानापूर्ति करके, मिलने-जुलने वालों से प्रशंसा हासिल करके अपने जीवन की सार्थकता महसूस करे।

'आपके सवाल में मुझे ज्यादती दिख रही है... क्योंकि दोनों ही अहम हैं या कम-से-कम दोनों को एक-दूसरे के विकल्प के रूप में तो नहीं ही लिया जा सकता है...'

'फिर भी...' मैं गोकि संवाद हर सूरत में बनाये रखना चाहता था।

'उस सूरत में यदि चुनना पड़े तो मैं 'स्वाद' को ही चुनूँगी।'

उनके मुँह से 'स्वाद' के उच्चारण मात्र ने किधर से क्या किया कि मेरा काया-कल्प हो गया। मर्लिन मुनरो की आमंत्रित करती मुद्रा में मुझे वे ही साक्षात दिखने लगीं। मुझे तुरंत याद आया उनके खालीपन का वह कोना जिसने उन्हें कलागत सौंदर्य की तरफ अग्रसर किया था। मैं बड़ी शिद्दत से महसूस करने लगा कि अपने खड़ूस कारोबारी पति के साथ वे कितना अतृप्त और अधूरा महसूस करती होंगी... मुझे याद आया कि हम कितने समय से कितना जीवंत संवाद शेयर कर रहे थे। मुझको कौंध आई अपने एक मित्र की टिप्पणी कि विपरीत सेक्स के लोगों के बीच मुसलसल संवाद और संप्रेषण, दरअसल उनकी शारीरिकता के परस्पर खिंचाव की ही अभिव्यक्ति होता है।

मुझे याद आने लगी नादानी से भरी उनकी संवाद अदायगी और चौंकानेवाली जहीनियत की चादर जो वह गाहे-बगाहे ओढ़ लेती थीं। मुझे पहली बार यह अहसास भी हुआ कि उस कमरे में अकेले बतियाते हमें कितना वक्त हो गया था और कितनी बार मैंने ही उनके पल्लू बदलने की हरकतों को सायास नजरअंदाज किया था।

'मैं आपका हाथ देख सकता हूँ।' मैंने किसी तरह अपने को काबू में रखते हुए कहा। मेरे भीतर की कोई चीज असमंजश की कुहेलिका को चीरने का जोखिम उठा लेना चाहती थी।

'आप इंटीरियर डैकोरेशन के अलावा ज्योतिष भी जानते हैं क्या?' वे सहजता से हँसते हुए बोलीं।

'हाँ, थोड़ा बहुत यकीन है... वास्तुशास्त्र तो वैसे भी ज्योतिष के बहुत करीब है।'

'लेकिन मुझे कतई यकीन नहीं है।' कहकर उन्होंने मुझे निचोड़ दिया।

इसके बाद वाकया बताने लायक नहीं है।

मुख्तसर तौर पर कहूँ तो हुआ यूँ कि उनके ज्योतिष पर यकीन न होने की सूचना मिलते ही मैंने उनकी बाएँ हाथ की हथेली अपने पंजों में भर ली। दूसरी हथेली भी भर लेनी चाहिए थी इसका अहसास तब हुआ जब उसने तमाचे का रूप धरकर मेरे बाएँ गाल पर गौरतलब दस्तक दे डाली। अपनी शाइस्तगी को कुएँ में फेंक वह किसी जाहिल गँवार औरत की तरह अंग्रेजी में पता नहीं क्या अटरम-सटरम बड़बड़ाने लगी।

मैंने बड़ी मुश्किल से, चौखट से मात्र एक गूमट खाकर उसके घर से निजात ली। मगर उसकी बदसलूकी की हद तो देखो? मेरे घर से पचास मीटर दूर जाने के बाद भी पुरोहित साहब जैसे नेक इनसान के यहाँ से शाम तक ही मुझे नौकरी से हटवा देने के लिए वह अपने बाप की बेटी होने का सरेआम दावा पेश करने तक से बाज नहीं आ रही थी।

मेरा यकीन पुख्ता हो गया है कि पैसेवालों ने कला, संस्कृति और सलीके का सहारा लेकर पूरे समाज का बड़ा अहित किया है।

या कम-से-कम भगवान इस औरत को इतना बड़प्पन तो दे कि वह इस बात पर विचार करे कि मेरी उम्र कच्ची है और मेरी नौकरी चली गई तो भगवान उसे कभी माफ नहीं करेगा।

यह जानने के लिए कि सुघड़ शालीन-सी दिखनेवाली औरतें निहायत बेवकूफ और टुच्ची होती हैं, आप तीसरी कसम का इंतजार न करें। मेरी उससे असहमति पर गौर करें... कि मैंने उसका नाम तक आपको नहीं बताया।

उससे फर्क भी क्या पड़ता है।

https://www.hindiadda.com/mahattama-samapavartya/